तारा पांडे

रेखाएँ

लेखिका

श्रीमती तारा पाँडे

प्रकाशक
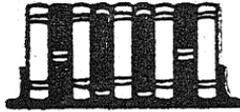
४-१३३ गोवर्द्धन सराय

बनारस

सोल एजेन्ट
विद्याभास्कर बुक डिपो
ज्ञानवापी, बनारस ।

प्रथम संस्करण
५०० प्रति
१५ जौलाई १९४१ ई०
मूल्य आठ आना

मुद्रक—पी० घोष
सरला प्रेस, बाँस फाटक
बनारस ।

अभिनन्दन

सौ० तारा देवी की पद्य रचनाओं से हम लोग बहुत दिनों से परिचित हैं, किन्तु इधर उन्होंने अपने कवित्व की अभिव्यक्ति उसके पूर्ण रूप में की है– वे गद्य-गीत भी लिखने लगी हैं।

यद्यपि उनका यह क्षेत्र अपेक्षाकृत नया है फिर भी उनके गद्य-गीतों में हम गोचर से अतीत के प्रति मानव-रागात्मक प्रवृत्ति की ऊँची उड़ान पाते हैं। ऐसा लगता है कि उस उड़ान के डैने उन पावन चरणों की, जो विश्व-माधुरी के स्रोत हैं छू-छू लेते हैं, एवं इस स्पर्श की मृदुता से वे पुलकित हो उठते हैं और उनमें से लोकोत्तर संगीत निनादित हो उठता है। सामवेद भी तो गरुड़ के डैनों की ध्वनि है, जो भगवत् चरणारविंद के स्पर्श से पुलकित हो उठे थे।

हिंदी के गद्यगीत का साहित्य दिन-दिन अभिवृद्धि पर है। हम समझते हैं कि तारा पाण्डेय का उसमें भी एक स्थान बन रहा है। उनकी सुचारु 'रेखाएँ' हमारे हृदय पर खचित रहने वाली हैं। अतएव हम उनका अभिनन्दन करते हैं।

श्रावण वदि २, १९९८

(राय) कृष्णदास

सूची

रेखाएँ

वेदना

ओ मेरे हृदय की वेदने !

तूने क्यों मुझे अपनी संगिनी बनाया ?

अरी निष्ठुरे !

मेरा बचपन तेरी छाया से मुर्झा गया, मिट गया।

तू ने मुझे क्यों अपनाया ?

ओ अनिमंत्रिते !

मुझे अपनी किशोरावस्था में तेरा साथ न भाता था, मैं अपना स्वप्नों का संसार बसा रही थी ··· पर अरी बावली, तू क्यों आगई ?

ओ अमर वेदने !

तू मेरी प्रसन्नता को अपनी उंगलियों के स्पर्श से ही पीली क्यों कर देती है ?

तू मेरे प्राणों में क्यों बस गई है ?

मैं तेरी बन्दिनी हो गई री ! मैं तेरा त्याग करूंगी ············

तू जा···चली जा न ·········!

अरी मेरे हृदय की ज्वालामयी शिखा !

ओ मेरी वेदना !!

अभाव की पूजा

जब अपना होश संभाला तो मैंने जाना कि मुझे दुनियाँ में बहुत अभाव है, घर में भी चारों ओर अभाव ही दीखा और अपने मन में अभाव ही मिला !

मैंने सोचा - 'यह कब मिटेगा ?'

संभव है बड़ी होने पर ?

मैं बड़ी होने लगी किन्तु अभाव न गया ! मैंने आशा की 'यौवन के आने पर ही यह दूर होगा, ।

जब देवता के चरणों पर जीवन-फूल चढ़ जायगा तब अभाव कहां रहेगा ? देवता की प्रसन्नता अभाव मिटा देगी !

और तब एक दिन मेरे द्वार पर देवता आगये ! मैंने सर्वस्व दे दिया। किन्तु वह सर्वव्यापी अभाव न गया ! न गया !!

सोचा-देवता प्रसन्न नहीं हुए क्या ? परन्तु मेरे पास और था ही क्या जिसे मैं उनकी सेवा में अर्पण करती ? कैसे वे प्रसन्न होंगे ?

प्रभु ! मैंने प्रार्थना की ।

मेरे उर की समस्त आकांक्षाऐं हाहाकार कर उठीं ! हायरी अतृप्त ! मैं रो पड़ी !

शान्ति के लिये !

आज देखती हूँ मेरे लिए इच्छाओं का कोई मूल्य नहीं। मन की वह अस्थिरता भी नहीं, देवता की प्रसन्नता भी नहीं चाहती मैं ! केवल पूजा करती हूँ !

अरे ! मैं अपने अभाव की पूजा करती हूँ ! प्यार करती हूँ ! और स्वागत करती हूँ ! उसके मिटने की इच्छा नहीं करती !

मेरा अभाव अमर है !

निराशा

बचपन के दिन बीते, यौवन भी आया और चला गया !

कब और कैसे ?

रह गया केवल मात्र थका हुआ शरीर और मुर्झाया हुआ मन !

न जाने कितने प्रश्न, कितने दुःख-सुख, और कितनी इच्छाएें सो गई हैं !

उसी अतीत के साथ मिल गई हैं ! मैं अपने को पाती हूँ निराशा के सागर में ! असमय ही में मैं क्यों वृद्धा होगई ! मैं झरने की तरह गम्भीर होना चाहती हूँ ! और मैं फूलों की तरह हँसना चाहती हूँ !

किन्तु— —

मैं देखती हूँ मैं क्लान्त हूँ मेरी शक्ति शिथिल होगई है !

हां मेरे दिन बीत गये हैं

सूनी रात !

अँधेरी और सूनी रात !

प्रतीक्षा में बैठी पलकें झपने लगीं दीपक की टिमटिमाती ज्योति निराशा को बढ़ाने लगी।

अँधेरी और सूनी रात !

इतने बड़े विश्व में मानव को केवल अपनापन ही भाया ! हाय री, दुर्बलता ! औरों के लिये सोचने का समय कहाँ ?

ओ पागल ! देख–

अँधेरी और सूनी रात !

चारों ओर कालिमा लिये अँधेरे का राज्य छाया जीवन की आशा निराशा में परिणित हो गई ! पत्तों की खड़खड़ाहट ने फिर एक बार मन में आशा का संचार किया !

किन्तु

सूनी और अँधेरी रात !

आज इस बेला में केवल मात्र एक के लिए वह द्वार खुलेगा जो युगों से बन्द है। यदि इसी क्षण वह आगया तो इस टिमटिमाते दीपक के प्रकाश में वह देखेगा – एक ओर वह फूलों की माला जो कभी ताजे और सुगंधित फूलों से बनाई गई थी, किन्तु आज छूने मात्र से जिसकी पंखुरियाँ बिखर जाएँगी ! आज वे फूल नहीं फूलों का उपहास मात्र हैं। और तब चारों ओर वह देखेगा -

अँधेरी और सूनी रात !

जीवन के स्वप्न बीत जाते हैं, हृदय ऊबकर मृत्यु की चाहना करने लगता है।

ऊषा धीरे धीरे संध्या में मिल जाती है !

और रह जाती है केवल-

सूनी और अँधेरी रात !

विचित्र-चाह

भूला-भटका पथिक उसके द्वार पर रुका।

"तुम क्या चाहते हो राही?" उसने पूछा। "बाले!" पथिक ने कहा "वह जो अधखिला फूल तुम्हारे जूड़े में स्थान पा गया है, उसकी एक पंखुरी मात्र!"

"कैसे विचित्र हो तुम! भूखे हो, भोजन नहीं चाहते, थके हो, विश्राम की इच्छा नहीं करते, और प्यास से तुम्हारा कंठ सूख रहा है परन्तु तुम जल भी नहीं चाहते! चाहते हो फूल की पंखुरी मात्र! कैसे अनोखे हो तुम!"

पथिक चुप रहा।

"ओ मेरे अतिथि!" उसने कहा "यह फूल तो चढ़ चुका है, तुम्हारी याचना कैसे पूर्ण करूं"? "मैं लौट जाऊँगा देवि, चिन्ता न करें"

जिस पथ से आया था उसी पथ से पथिक लौट चला!

मुग्धा-सी, खोई-सी वह खड़ी ही रह गई! न जाने कब और कैसे उसका हाथ जूड़े में से चुप चाप फूल की एक पंखुरी चुन लाया,

भावावेष में उसने वह पंखुरी उसी पथ पर डाल दी जिस पथ से उसका अतिथि लौटा था! हवा का एक झोंका पंखुरी को उड़ा ले गया–

कहाँ? किसके पास?

मन में पावस है

हर समय आसमान में बादल छाए रहते हैं ! मेरे मन में भी इसी तरह घनघोर बदली छाई रहती है !

कौन जाने हृदय की आकुलता क्यों ? मन का रहस्य क्यों इतना अज्ञात है ?

पृथ्वी पर बूँदें पड़ती हैं । मेरी आँखों से भी सावन की झड़ी लग जाती हैं ! आँसू की यह बरसात क्यों मेरे प्राणों को बहाने के लिये उत्सुक है ?

रह रह कर बिजली चमक रही है ! बीच बीच में मेरी आशा भी इसी प्रकार प्रकाश दिखाती है !

कैसे रोक पाऊँ इसे ?

जीवन तो दुःख का छोर पकड़ कर उलझ गया है । झिल्लियों की कर्कश झंकार से दिशाएँ चौंक उठती हैं ! मेरी अपनी ही करुण-पुकार उर को विदीर्ण कर देती है !

वह शान्ति का स्वर भी इससे टकरा कर लौट जाता है !

राही

राही राह भूल गया !

वह भटकता ही रहेगा क्या ?

उस दिन मेरे द्वार पर भी किसी के पुकारने का शब्द सुनाई दिया था, क्या वही राही था ?

वर्षा की बूँदें अपने मन के अरमान निकाल रही थीं, किसी विरही की बाँसुरी मन, प्राण को अकुला कर बज उठी ! उसी समय किसी ने मेरे द्वार पर थपकी दी थी !

राही राह भूल गया !

उसे मार्ग नहीं मिलेगा क्या ?

मैं नहीं उठी, वह लौट गया, न जाने कहाँ ? मैं उदास हो गई न जाने क्यों ?

ऊपर से झाँककर देखा तो उसकी छाया मात्र दीख पड़ी ! वह राह भूल गया।

उसे मैंने नहीं बुलाया। पता नहीं किस देश का था कहाँ, चला गया ?

हवा का तेज झोंका मेरे शरीर को स्पर्श कर गया मानो उसी राही की ठंडी साँस हो !

राही राह भूल गया !

मैं समाधि हूँ

मैं अपनी इच्छाओं की समाधि हूँ !

वे इच्छाएँ जो कभी भी पूरी न हो सकी !

अब मैं उन पर स्मृति के फूल चढ़ाती हूँ ! मैं स्वयं अपनी इच्छाओं की समाधि हूँ !

जो फूल डाल पर मुर्झा जाता है उसके लिये सभी को दुःख होता है, किन्तु जिसे तोड़कर फूलदान में रख दिया जाता है उसके अभाग्य पर कोई नहीं रोता ! यही सोचकर मुझे व्यथा होती है !

मैं रोती हूँ उसके लिये !

मैं अपनी ही समाधि हूँ !

उस पक्षी के लिए मेरा हृदय बेचैन होता है जिसे कोई अपने मनोरंजन के लिए बन्दी बनाकर पिंजरे में रख देते हैं !

मैं दिन-रात उसकी मुक्ति के निमित्त प्रार्थना करती हूँ ! मैं जीवित ही समाधि बन गई हूँ !

किन्तु······

मेरी प्रार्थना में बल नहीं !

मेरी इच्छाओं का मूल्य नहीं ! और···

अभिलाषायें सो गई हैं ······!

मैं अपनी ही इच्छाओं की समाधि हूँ !

प्रतीक्षा

उसने कहा था मैं आऊँगा !

अनेक कठिनाइयों को पार करके मैं यहाँ आई, आशा से, उत्साह से मन भर गया !

उसने कहा था मैं आऊँगा !

सखी, वह कब आवेगा ?

रवि अस्ताचल को गए, पक्षी नीड़ों में छिपे, गायों की पद धूलि से मार्ग धूमिल हो गया, मैं उसकी प्रतीक्षा में हूँ !

उसने कहा था मैं आऊँगा !

मेरे तो सभी काम पूरे होगये, कुछ भी शेष नहीं, न जाने कितनी देर से मैं मार्ग देख रही हूँ, अंधकार घना हो जायगा, झिल्लियों की झंकार तेज होती जा रही है, जनहीन पथ में रह रह कर ठण्डी हवा के झोंके हड्डियाँ कंपा रहे हैं !

मेरी पलकें शिथिल होने लगीं !

उसने कहा था मैं आऊँगा !

हृदय को गला कर आँखों की राह बहा डाला, यौवन के स्वप्न आहों से झुलस गये, उमंगों की तरंगें समय के प्रवाह में लीन हो गईं ! और मैं अपनी ही समाधि बन गई हूँ ! वह नहीं आया सखी !

उसने कहा था मैं आऊँगा !

पूजा का सामान प्रस्तुत है, दीप जला चुकी हूँ, फूलों की माला विलंब के कारण मुर्झाने लगी है, मैं व्याकुल हूँ, वह नहीं आएगा क्या ?

उसने कहा था मैं आऊँगा !

शृंगार

सखी ने मेरी चोटी गूँथ कर उसमें फूल लगा दिये !

संध्या के रक्त-वर्ण सौन्दर्य की एक रश्मि आकर वेणी को चूम गई !

मन न जाने किस सुख का अनुभव करके नाच उठा !

वे आकर देखेंगे ! अरे ! क्या सत्य ही आज वे देख कर मेरा शृंगार सफल करेंगे ?

चंगेरी के और फूल महक उठे !

संध्या के उपरान्त रजनी का राज्य छा गया !

तारों को देख कर मेरे मन में गर्व हुआ !

आज रात को श्वेत फूलों से शृंगार करके जब मैं मुस्कराऊंगी तब इन तारों की चमक क्या फीकी न हो जायगी ?

वे आकर जब मुझे हृदय से लगा लेंगे तब रजनी का सारा सौन्दर्य छिप जायगा !

किन्तु.........

रात बीत गई !

प्रातः की मन्द समीर ने चौंका दिया था मुझे !

वेणी के फूल मुर्झा कर मेरी असफलता पर रो रहे थे !

रात को वे आये ही नहीं !

आशा

तुम तो मुझे प्यार करोगे ?

दुनिया ने मेरी उपेक्षा की, मैंने भी संसार को मिथ्या कह कर बदला लिया ! किन्तु तुम जब मुझे न चाहोगे तब मैं क्या करूँगी ? तुमसे भिन्न मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं ! बोलो न !

तुम तो मुझे प्यार करोगे ?

सुनहरे प्रभात में फूलों ने खिलकर, कलियों ने हँसकर, भ्रमरों ने गाकर, और ओस ने तुम्हारे चरण धो कर स्वागत किया तुम्हारा ! पर मेरी आँखों से केवल आँसू ही बहकर रह गए !

तुम्हारे चरण तो ओस से धुले थे मेरे आँसू व्यर्थ ही हुए क्या ?

कुछ भी हो...

तुम तो मुझे प्यार करोगे !

संध्या की सुनहरी बेला में तुम्हारे स्वागत की ध्वनि गूँज उठी ! नभ में तारों के बन्दनवार सजे, गो-धूलि से दिशाएँ भर गईं और चाँदनी तुम्हारे पथ में बिछ गई !

किन्तु, मेरी आँखों से तो फिर भी आँसू ही ढुलक पड़े !

तुम तो तारों का हार पहनते हो, मेरे इन आँसुओं का क्या होगा ?

ओ मेरे देवता !

तुम तो मुझे प्यार करोगे ?

वह लौट गया।

वह आया और चला गया!

सभी कहते हैं वह आया था। तब क्या बिना मुझसे मिले ही वह लौट गया?

वह तो मेरी उपेक्षा कर ही नहीं सकता!

मैं उसके स्नेह का प्रतिदान नहीं दे सकी

इसी से–

वह आया और चला गया!

किन्तु–

उसका स्नेह कैसे उसे मेरे द्वार से लौटा ले गया? वह चला गया!

वह मेरी साधना में विघ्न नहीं डालना चाहता। वह मेरी शान्ति भंग नहीं करना चाहता!

तभी तो–

वह आया था और लौट गया!

बेटी की विदा

छोटी बच्ची ने माँ के गले में झूलते हुये कहा —:

मेरी गुड़िया का व्याह कब होगा ? मां ? मैं गुड़िया का व्याह करूंगी ! उसे विदा करूंगी ।

उस दिन माँ ने हँसते हुए बेटी की ओर देखा ! वही बच्ची धीरे धीरे बड़ी हुई !

विस्मय से पूर्ण उसकी बड़ी बड़ी आँखें न जाने क्या देखती ढूंढ़ती रहती थीं !

कोमल अधर मुस्कान से सदैव काँपा करते थे ! जिज्ञासा से भरा हुआ मन उसे बेचैन किया करता ! उसकी चितवन माँ से बार बार न जानें कौन सा अनुरोध करने लगी । माँ ने समझा ! और उसदिन चिन्तित होकर माँ ने बेटी की ओर देखा !

तब एक दिन धूम धाम से बेटी का ब्याह हो गया ! हर्ष और विषाद से उसने मां के गले से लिपट कर छाती में मुँह छिपा लिया ! माँ का आँचल भीग गया !

उस दिन–आँसू भरी आँखों से माँ ने बेटी की ओर देखा !

बेटी की विदा हो गई !

दूर पर बाजे का स्वर उदासी भर रहा था !

माँ के आँसू थमते ही न थे !

उस दिन—आँखों में असीम सूनापन भरकर माँ ने देखा—किसकीओर ?

संदेश

उस दिन —

दादी ने कहा—'जा बेटी, फूल तोड़ला, पूजा करनी है, मैं गई थी फूल लाने—पहाड़ों के ऊपर, हिमालय की ऊँची और धवल चोटी पर अभी-अभी सूर्य की प्रथमकिरण पड़ी थी, बाग में तरह तरह के सुमन खिले थे, भौंरे गुन-गुन गा रहे थे, ऐसा एकान्त था मानो मेरे सिवा और किसी मानव का अस्तित्व ही नहीं !

मैं यह भूल गई कि मैं किस लिये आई ? मेरा क्या काम है ? सोचने लगी केवल उन्हीं फूलों के बारे में ! उनके रचयिता के प्रति मेरी जिज्ञासा बढ़ी ! उन्हें चुनने का विचार भूल गई !

सौन्दर्य के इस चरम विकास को मानव भला क्यों नष्ट करना चाहता है ?

मैं भूमि पर बैठ गई !

भ्रमर ने कहा —'गुन-गुन-गुन !' मैंने समझा ही नहीं !

फिर वही 'गुन-गुन-गुन ! यह क्या ? मैं खीझ उठी !

फूलों ने विहँसते हुए कहा—

' प्रेम-संगीत ! 'प्रेम-संगीत' ! 'प्रेम ? प्रेम क्या है ? मैंने आश्चर्य से देखा और मौन द्वारा पूछा भी ।

"पगली"—मैंने सुगंध द्वारा संदेश पाया—"प्रेम ही तो निर्मम संसार की विभूति है, जीवन है, अमृत है और मुक्ति भी !"

मैंने कहा 'वासना ?"

उत्तर मिला - "मिथ्या है वह ! प्रेम सत्य है, प्रेम देवता है। वासना बंधन है !"

"कहाँ पाऊँगी मैं ? और किससे सीखूँगी ?" व्याकुल हो कर चिल्लाई मैं !

"अपने ही हृदय में पाओगी, इन्ही फूलों से सीखो न !" मेरे माथे को स्पर्श कर के हवा का झोंका चला गया !

मैं चौंक पड़ी !

सुना -- दादी कह रही थीं --'अरी पगली, क्या करने लगी ?"

आँखें खोल कर उठी तो सामने फूलों की डलिया सूनी पड़ी थी !

मैंने कहा—'यह स्वप्न था या सत्य ?'

दादी बोलीं—'तू ही जान।'

उसी दिन से—

मैं तो जान गई कि जिसकी पूजा के निमित्त फूल चुनने गई थी, उसी ने फूलों के द्वारा मुझे जो संदेश दिया वह भी क्या स्वप्न हो सकता है ?

जाना ही होगा

जब वह आएगा तब मुझे जाना ही पड़ेगा !

मैंने अभी अपना कार्य समाप्त नहीं किया, किन्तु जब वह आएगा तब मुझे जाना ही पड़ेगा !

वह अतिथि बनकर आएगा, कौन जाने उसका रूप कैसा हो ? वह प्रकाश से अधिक उज्ज्वल है या अन्धकार से परिपूर्ण ?

मेरा कार्य अधूरा ही है। वह अधिक नहीं ठहरेगा।

जब वह आएगा तब मुझे जाना ही पड़ेगा !

सभी वस्तुएँ अस्त-व्यस्त पड़ी हैं, गाय रँभा रही है, उसे पानी देना है, बच्चे को दूध पिलाना है, देवता की पूजा करनी है। मेरा अतिथि आने वाला है !

जब वह आएगा तब मुझे जाना ही पड़ेगा !

बहुत दूर पर गाने वाले ग्वाले का कण्ठ-स्वर मेरे प्राणों में सिहरन भर रहा है ! गायों की कतार जन-हीन पथ में धूलि उड़ाती हुई आगे जा रही है, उनके गले में बँधी घंटियों का स्वर बच्चों का कौतूहल बढ़ा रहा है !

मैं अपना काम छोड़कर देख रही हूँ ।

जब वह आएगा तब मुझे जाना ही पड़ेगा !

वर्षा

रिम-झिम-रिम-झिम बूँदें पड़ रही हैं!

आकाश मेघाच्छन्न है, गम्भीर गर्जन सुन पड़ता है, ठीक ऐसा ही मेरे मन के भीतर हो रहा है। इसे उत्सव कहूँ या उदासी?

मैं समझ नही पा रही हूँ!

रिम-झिम-रिम-झिम बूँदे पड़ रही हैं!

सामने की राह कोई पथिक चला जा रहा है! नंगे शिर, नंगे पैर, वह लापरवाह है क्या? या उसे अभाव है?

वह धीरे-धीरे चला जा रहा है!

बढ़ता ही जाता है, भीग गया है वह पानी से।

रिम-झिम-रिम-झिम बूँदे पड़ रही हैं!

पथिक चला जा रहा हैं!

बहुत दिन पहले की बात है—

वह भी एक पहाड़ी प्रदेश था, चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़, हिमालय की शुभ्र चोटी, और नीचे हरे-भरे खेत!

उस दिन भी ऐसी ही रिम-झिम-रिम-झिम, बूँदें पड़ रही थीं, ऐसे ही बादल घिरे थे!

किन्तु—

ऐसी उदासी नहीं थी, मेरा ऐसा मन नहीं था!

लेकिन—

दिन तो ठीक ऐसा ही था!

रिम-झिम-रिम झिम बूँदें पड़ रही थीं, आकाश मेघाच्छन्न था, गम्भीर गर्ज्जन भी!

अरे! वह बहुत दिन पुरानी बात है!

मुसकान

क्षितिज के उसपार से एक संकेत भरी मुस्कान मुझे रिझा रही है !

मैं उसे प्यार करती हूँ। वह ऐसी ही मोहिनी शक्ति रखती है !

सखी, मैं जाऊँगी !

क्षितिज के उसपार से एक संकेत भरी मुस्कान मुझे रिझा रही है !

सखी, आ मेरा शृंगार कर दे,

हाथों में मेंहदी रचा, पैरों में महावर लगा, माँथे में बिन्दी और माँग में सिंदूर भर दे ! मैं सज कर जाऊँगी, मेरी चूड़ियों की झनकार से वह मुस्कान और भी सुन्दर हो उठेगी !

क्षितिज के उस पार से संकेत भरी मुस्कान मुझे बुला रही है !

सखी, आ मुझे विदा दे।

मेरी आँखों के आँसू आँचल भिगा देंगे, क्षुब्ध न होना ! आँखों का काजल बहकर गालों को श्यामवर्ण कर देगा — उस मुस्कान का रंग भी ऐसा ही है !

सखी, मुझे विदा कर दे !

उसका रूप स्पष्ट हो गया !

वह मृत्यु की मुस्कान मुझे अति प्रिय है !

क्षितिज के उसपार से शान्तिमयी मुस्कान मेरे लिये व्याकुल हो रही है !

मधु-ऋतु

बसन्त ऋतु में फूलों की सुगंध से उपवन भर गया !

आम के पेड़ों पर पीले बौर आ गए !

पपीहा पागल होकर पुकार उठा—'पी-कहाँ ?'

प्रतिध्वनि से उपवन गूंज उठा ? 'पी-कहाँ ?'

निर्जन दोपहरी में गाँव की छोटी-सी नदी के किनारे बैठी हुई वियोगिनी सहसा चौंक पड़ी—

'पी-कहाँ ? वेदना से प्राण सिहर गए !

मधु-ऋतु की बहार से अकुला कर पपीहा बार-बार पुकार उठता है—'पी-कहाँ ?' 'पी-कहाँ ?'

कलियों ने आँखें खोलीं !

कोयल की कूक जगा गई थी उन्हें !

फूलों की गंध से व्याकुल होकर भौंरा गुनगुनाने लगा !

पिकी ने पंचम स्वर से गाया !

वसन्त-ऋतु में कोयल की कूक सुनकर अवसाद से मन भर गया !

सुहागरात

सखी, आज तेरी सुहागरात है !

आ, तेरी माँग में सिंदूर भर दूँ !

हाथों में चूड़ियाँ पहना दूँ,

आँखों में काजल लगा दूँ और मुँह में बीड़ा दे दूँ !

सखी, आज तेरी सुहागरात है !

तेरे स्वामी तेरी प्रतीक्षा में बैठे हैं,

दीपक का धीमा प्रकाश तेरी बाट देखता है,

शय्या के फूलों की गंध से कमरा भर गया !

सखी, आज तेरी सुहागरात है !

मेंहदी रचे हुए तेरे हाथों को देखकर स्वामी का हृदय खिल उठेगा।

आँखों में काजल लगाकर रो मत देना, गोरे कपोल काले हो जाएँगे !

सखी आज तेरी सुहागरात है !

त्रयोदशी का चन्द्रमा तेरे मुँह पर अपनी चाँदनी उँडेल रहा है,

आ तुझे द्वार तक पहुँचा आऊँ !

सखी, आज तेरी सुहागरात है !

पपीहा

पपीहा, तू क्या कहता है ?

डाल में बैठकर तू किसे पुकारता है ?

ओ पपीहा, तू क्या कहता है ?

तेरी इस पुकार से मेरे मन, प्राण एक मधुर पीड़ा से पूर्ण हो उठते हैं, आँखे भर आती हैं, हृदय तेरे स्वर में स्वर मिला कर पुकार उठता है, 'पी'-'पी' !

ओ रे पागल ! स्वयं प्यासा रह कर औरों से पी-पी क्यों कहता है ?

तेरी इस अनोखी बात से मैं रो पड़ती हूँ, सचमुच कैसा अनोखा है तू ?

ओ विरही, मुझे बता तेरा प्रियतम कहाँ है ! मैं उसे ढूँढ़ लाऊँगी !

नदी, बन, पर्वत, सागर और आकाश में जहाँ भी वह होगा मैं उसे खोजूँगी !

तेरी विरह-व्यथा उसे सुनाऊँगी !

वह निश्चय ही आवेगा।

उसका रूप तो बता।

यह वेदना कब तक सहेगा रे बावरे ?

तेरे स्वर से विरहिणी के प्राण अकुला जाते हैं, अपना दुख औरों को मत बाँट !

तू क्या कहता है रे ?

पपीहा, तू किसे पुकारता है ?

मन के प्रति

अरे मन ! तू क्या चाहता है ?

क्या तू सुवर्ण पा [illegible] प्रसन्न होगा ?

यह देख, संध्या का सूर्य अपना सुवर्ण वैभव बाँट रहा है, जा न, बटोर ला उसे !

आकाश के बादल भी सोने के हो गए,

पृथ्वी के कण-कण में सोना बिखर गया !

फिर भी तू उदास है, निर्धन है, रीता है, और स्वर्ण चाहता है !

बता न तू क्या चाहता है ?

क्या तू चाँदी की इच्छा रखता है ?

अच्छा, देख यहाँ रात को चन्द्रदेव कितनी वर्षा करते हैं चाँदी की ! तू क्यों न उस चाँदी में नहाता है ? क्या तू उस चाँदनी में नहा कर भी प्रसन्न नहीं हुवा ?

तृप्त नहीं हुवा ?

ओ अभागे ! तू किसकी इच्छा रखता है ?

क्या सोचना चाहता है रे पागल ?

सोचले जी भर कर सोच ले, रोकता कौन है ?

उस महाशक्ति को सोच, इस प्रकृति को सोच, जीव की बातें सोच, और ब्रह्म को सोचने का प्रयत्न कर !

नहीं, तू यह सब नहीं करेगा !

तू यह नहीं चाहता !

बावरे ! तू क्या हँसना चाहता है ?

हँस ले, खूब हँस ले, फूलों के साथ हँसना, कलियों के साथ मुस्काना
और छोटे शिशुओं के मधुर हास से अपना हृदय भर लेना !

हाय ! फिर भी इच्छा पूर्ण नहीं होती ?

ओ अतृप्त ! तू क्या चाहता है ?

क्या तू रोना चाहता है ?

चुपचाप रात को तारों के साथ रोना,

दुखियों के आँसू में अपने आँसू मिलाना,

पीड़ित की पीड़ा से अपना अन्तर भर लेना,

कोई नहीं रोकेगा रे रोने से तुझे !

खूब रो लेना, तू महान होगा, पूर्ण होगा !

मन ! तू क्या चाहता है ?

स्मृति जागी !

सामने के मन्दिर का घण्टा बज उठा !

प्राणों में कई दिन पूर्व की स्मृति जागी !

वसन्त के आने में अभी कुछ देर थी, परन्तु स्वागत की तैयारियाँ हो रही थीं।

खेतों में हरियाली की छटा ! टेसू के फूलों की बहार मन को मोहित करने वाली थी।

सामने के मन्दिर का घण्टा बज उठा !

मेरे अन्तर में सोई स्मृति जागी !

संध्या की वेला में एक मधुर उल्लास, एक अनजाने सुख और निर्मल हृदय को लेकर मैंने गृह-प्रवेश किया था !

तभी मन्दिर का घंटा बज उठा था !

आज—वर्षों बाद—जब मेरे मन में और जीवन में कई परिवर्तन हो गए हैं सामने का मन्दिर उसी प्रकार खड़ा हो मुझे उस दिन की याद दिलाता है। जी चाहता है सहस्रों कानों से सुनूं उस ध्वनि को !

आज इस सांध्य वेला में,

गोधूलि उड़ते हुए पथ में मेरी आँखे उस दिन को खोजती है जब मैंने इस गृह में प्रवेश किया था !

मन्दिर का घंटा बज उठा !

मेरे प्राणों में मधुर-स्मृति जागी !

दीपक से

दीपक ! तू कब तक जलेगा ?

बता रे बता !

तेरा समस्त स्नेह चुक गया था, तब भी तू जलता ही रहा, कौन-सा बरदान पा गया तू ?

ओ दीप ! बता रे बता !

तुझे कौन-सा सुख प्राप्त होता है जलने में ?

सारे विश्व को प्रकाश का दान करने वाले !

तेरे नीचे अँधेरा है ! क्या तू यह जानता है ?

कैसा दान है यह ? ओ प्रकाश के पुञ्ज !

बता रे बता !

ओ दीपक ! तू मेरा मार्ग प्रकाशमय कर !

मेरी प्रार्थना स्वीकार करेगा क्या ?

ज्योतिर्मय ! बता रे बता !

अन्तिम-आभा

पश्चिम में डूबते हुए सूर्य की अन्तिम-आभा मेरे प्राणों को सदैव आकुल करती है !

कितनी ही जीवन-संध्याएँ मैंने देखी है, संभावित भी और असम्भावित भी !

किन्तु यह नित्य की संध्या मेरे मन, प्राण को उच्छ्वासों से भर देती है।

झिल्लियों की झनकार से उदासी का राज्य छा जाता है, पथ में गोधूलि उड़ने लगती है ! उस समय डूबते हुए सूर्य की लाली मेरे अंतर में अंधकार भर देती है !

घसियारा घास लिये जल्दी-जल्दी घर की ओर पैर बढ़ाता है, न जाने कहाँ और कितना दूर पर बैठा हुवा कोई बाँसुरी बजाता है !

मेरी काल्पनिक आँखें उसे देखने में समर्थ होती हैं ! उसके हाथों के चाँदी के कड़े उस मलिन वेष को उज्ज्वल कर देते हैं !

बाँसुरी से निकली हुई तान उस डूबते हुए सूर्य की अन्तिम किरण में मिलकर मेरी उदासी को और भी बढ़ा देती है !

अधूरा-चित्र

चित्रकार ! तुम्हारा चित्र अधूरा ही है !

कई प्रकार के फूल बना कर तुमने चित्र को सजाया किन्तु वह कली बनाना तो तुम भूल ही गए जो बिन खिले ही मुर्झा गई ! उसकी सूखी पंखुरियों का सौन्दर्य तो चित्र का प्राण है ! उसकी अन्तिम बिदा तो दिखानी ही होगी !

चित्रकार ! तुम्हारा चित्र अधूरा ही है !

बच्चे माँ की गोद में सो गए, चिड़ियाँ अपने अपने घोंसलों की ओर उड़ चलीं, पश्चिम की ओर अंधकार गहरा हो उठा यह तुमने दिखाया, किन्तु सब से पहला नक्षत्र तो चित्रित ही नहीं किया ! बिना उसके चित्र की सुन्दरता कहाँ ?

चित्रकार ! तुम्हारा चित्र अधूरा ही है !

दीपक दिखाओ

मैं मार्ग भूल गई हूँ, मुझे दीपक दिखाओ !

मैंने इस काँटों से भरे पथ को छोड़कर पार जाना चाहा था किन्तु इन्हीं काँटों में फँस गई हूँ मैं !

मुझे दीपक दिखाओ !

मैंने उस अमर ज्योति का दर्शन करना चाहा था, पर मैं अन्धकार में भटक गई हूँ !

खो गई हूँ !

मुझे दीपक दिखाओ !

प्रकृति का सम्पूर्ण सौन्दर्य बासी फूल की तरह कुम्हला गया है, मेरी समस्त चेतना लुप्त हो गई है, मैं जड़ हो गई हूँ !

मुझे दीपक दिखाओ !

संसार का प्रकाश मुझे अंधा कर देगा, मृगजल से प्यास नहीं बुझती, मैं अमृत पीना चाहती हूँ, मैं अमर ज्योति में मिलना चाहती हूँ !

मुझे दीपक दिखाओ !

दीप जला दे !

बहू ! तुलसी के सामने दिया जला दे।

साँझ हो गई !

गायों का झुन्ड घर चला गया, आसमान में गोधूलि छा रही है ! दिया जला दे बहू।

साँझ हो गई !

संध्या का पहला दीप जल गया, पत्ती सब नीड़ों में छिप गए, बच्चों की आँखों में नींद का जाल बिछ रहा है, दीपक जला दे !

साँझ हो गई !

नदी की चंचल लहरों से पवन अठखेलियाँ कर रहा है, मार्ग भूला हुआ पत्ती आसमान में भटक रहा है, उसे राह दिखाने के लिये दीपक जला दे !

साँझ हो गई !

अंधकार घना हो गया है, नाव किनारे आ लगी, घर लौटते हुए ग्वाले ने वंशी की तान छेड़ दी, झींगुरों की झनकार तेज हो गई ! बहू ! दिया जला दे !

साँझ हो गई !

मिलन

रूप की आभा से शलभ के प्राण अकुला गए।

वह ज्योति की ओर खिंच गया।

ज्योति ने इंगित से उसे रोकना चाहा-ना — ना,

किन्तु पतंग खिचता ही आया!

उस रूप की आभा से शलभ के प्राण अकुला गए! जो ज्योति इतनी प्रकाशमय है, शान्त और सुन्दर है वह क्यों न मुझे अपनाएगी?

शलभ का हृदय आशा से भर उठा!

ज्योति का आलिंगन करने के लिये वह अधीर हो गया!

ज्योति ने स-शंक भाव से कहा—दूर-दूर!

प्रेम के आवेग से शलभ के प्राण अस्थिर हो उठे!

वह बढ़ता ही गया—खिंचता ही गया!

शलभ ने ज्योति को अपने पंखों से ढक दिया! ज्योति काँप उठी!

शान्त होकर उसने निर्विकार भाव से कहा—

'बचो! 'बचो' किन्तु पतंग अपने झुलसे हुए पंख लेकर नीचे गिर पड़ा! रूप की आभा से शलभ के प्राण अकुला गए वह ज्योति में मिल गया।

अनुरोध

सखी, जीवन के गीत गा !

मैं जड़ हो गई हूँ, मुझ में प्राण प्रतिष्ठा कर दे !

ओ सखी, जीवन के गीत गा !

चारों ओर हरियाली छाई है, फूलों की सुगंध मन को मुग्ध कर रही है, पीले-पीले फूलों के ऊपर भौंरे गुन गुनाकर बैठ रहे हैं, खिले हुए फूल मुक्त-हृदय से मधु बाँट रहे हैं, सजनी, इस बसन्तोत्सव पर मेरे मन में भी यौवन का संचार कर दे ! मुझे जगा दे !

सखी, जीवन के गीत गा !

मैं एक बार जागना चाहती हूँ, दुख के गीत न गा सखी, दुख मेरे प्राणों को चिर-शान्ति के सागर में डुबो देता है ! सुला देता है ?

आज बसन्त का गीत गा—

सखी, जीवन के गीत गा

सुख का गीत मत गाना,

सुख मुझे जड़ बना देता है, सुख से मेरे मानस का अंधकार घना हो जाता है, सजनी, आज प्राणों का गीत गाकर मुझे नया जन्म दे !

सखी जीवन के गीत गा !

काव्य की रचना

कवि ने काव्य की रचना की।

युग के जागरण का समय था, जनता क्षुब्ध हो उठी—"ऐसे जागृति के युग में यह मुग्ध-संगीत क्यों? नहीं-नहीं, कवि, तुम्हें चुप होना पड़ेगा, हम यह सौन्दर्य नहीं चाहते, हम दुख का गीत नहीं चाहते, हमें क्रान्ति चाहिये!"

कोलाहल से दिशाएँ गूँज उठीं!

कवि मुस्कराया!

कवि ने काव्य की रचना की।

किसान और मजदूरों की मूककथाएँ वाणी पा कर जाग उठीं! कवि की रचना घर घर पहुँच गई! खेतों की बातें, हल और बैल, किसान का परिवार कारखानों का वर्णन, मजूरों की दशा, मालिकों का अत्याचार—फिर...कवि को सुनाई दिया असन्तोष!

"जो कला चाहते हैं उनका क्या होगा कवि?"

कवि के विस्मय की सीमा न रही!

तब वह क्या लिखे?

इतने दिनों से अपने हृदय की वह जो उपेक्षा करता आया है, अपना दुःख औरों के दुःख में मिलाता आया है और अपना सुख सारे विश्व के मंगल के हेतु उत्सर्ग कर दिया वह क्या निष्फल गया? 'नहीं'!

हाँ, अब वह अपने मन से निकले हुए सत्य की रक्षा करेगा।

कवि मुस्करा उठा!

हृदय की बहुमुखी प्रतिभा जाग पड़ी!

कवि ने काव्य की रचना की!

उत्सव

तेरे द्वार पर उत्सव की धूम है!

मधुर शहनाई के स्वर से प्राण पुलकित हो रहे हैं, खिले कमल के फूलों से तेरी पूजा का प्रारंभ हो रहा है।

तेरे द्वार पर कोलाहल सुनाई देता है!

उत्सव की धूम है!

अनेक प्रकार की राग-रागिनियाँ भिन्न-भिन्न स्वरों से, ताल और लय से तेरा आह्वान कर रही हैं, नूपुरों की झंकार से नृत्य सफल हो गया है!

तेरे द्वार पर बड़ी भीड़ है!

आज उत्सव की बेला है!

विद्या और बुद्धि से तेरी अर्चना कर रहे हैं, कला-कौशल से सभी तेरा शृंगार करने को प्रस्तुत हैं। विज्ञान के प्रकाश से मन्दिर जगमगा उठा है।

तेरे द्वार पर आनन्द का साज है!

आज उत्सव का प्रभात है!

किन्तु मैं...? मैं क्या लेकर तेरे द्वार पर आऊँ?

आज उत्सव की धूम है!

मेरे स्वर से शहनाई का स्वर दब जायगा। मेरी इच्छाएँ मुर्झाए फूलों की तरह तेरे चरणों में पड़ी हैं! जन-रव से मेरे प्राण मूर्छित हो रहे हैं मैं क्या लेकर तेरे द्वार पर आऊँ?

आज उत्सव है !

आँसुओं में डूबा हुवा एक धीमा-सा स्वर जिसमें न छन्द है, न ताल, स्वर, गति-हीन, लयहीन, गीत मेरे कंठ में ही विलीन हो गया है। काँपते हुए पग असफलता का नृत्य दिखा रहे हैं। इतनी बड़ी भीड़ में केवल मैं ही दुर्बल हूँ, मैं कैसे तेरे द्वार पर रुकूँ ?

आज उत्सव की बेला है ?

प्रकाश की चकाचौंध में मेरी आँखे नहीं ठहरतीं। तेरे शृंगार के रत्नों में क्या आँसू के मोतियों का कोई स्थान ही नहीं ? मधुर वाद्य-यंत्रों में क्या करुणा के राग छिप जाते हैं ? अनेक प्रकार की नृत्य-भंगिमाओं में क्या जीवन के स्वाभाविक कंपन का अनुभव ही नहीं होता ? इस महान उत्सव में भी क्या भेद-भाव का स्थान है ?

तब क्या मुझे लौट जाना पड़ेगा ? इस उत्सव के प्रभात में ?

—:*:—

मुग्ध-गान

निर्जन टीले पर बैठकर कोई गा रहा है !

प्राणों में सिहरन भर कर इस स्वर ने मुझे कँपा दिया है, हृदय की गति तेज हो गई ।

यह स्वर जीवन का है या मृत्यु का ? निर्जन टीले पर बैठा कोई गा रहा है ।

नदी का जल चंचल हो उठा है, आकाश की गंभीरता को भंगकर के एक तारा टूट गया है, द्वितिया का चाँद बादलों में छिपकर मुस्कुरा रहा है ।

जाने कौन-सा रहस्य छिपा है इस गाने में ?

निर्जन टीले पर बैठा कोई गा रहा है !

भूली हुई बातें स्मृति के पथ से आकर हँसती-रोती हुई छाया-चित्रों के समान मुझे मुग्ध कर रही हैं !

कितने दिन बीत गए ! कितने वर्ष ?

निर्जन टीले पर बैठा कोई गा रहा है !

मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है । सामने की डाल पर बैठे हुए दो पन्छी पंख फड़फड़ा कर पूछते हैं "कौन गा रहा है ?"

दूर के टीले पर बैठा कोई गा रहा है !

कोयल अपना गाना भूल गई, पपीहे ने पी-पी रटना छोड़ दिया ।

गाँव की भोली बालिका विस्मय से विमूढ़ हो कर सुनती है...

उसके प्राणों में यह किसका स्वर गूँज उठा ?

निर्जन टीले पर बैठकर कोई गा रहा है !

माघ के मेघ

आसमान बादलों से घिर गया !

न जाने क्यों मेरा मन भर गया है अवसाद से !

प्राणों में उदासी छा गई है, सखी !

आसमान बादलों से घिर गया !

संभव है इन बादलों में मेरा बचपन छिपा हो, तभी तो बादलों के घिरने से मेरे प्राण अनमने हो जाते हैं। आसमान बादलों से घिर गया !

कौन जाने मेरे यौवन के दिन इन्हीं घटाओं में लिपटे हों !

आज रह-रह कर मेरा हृदय आकुल हो रहा है !

आसमान बादलों से घिर गया !

बर्षा की ये नयी और ताजी बूँदे मेरी उन पुराने दिनों की स्मृतियों को जगा रही हैं—जो मधुर से भी मधुर और कटु से भी कटु हैं !

सखी !

आसमान बादलों से घिर गया !

सामने के मन्दिर की घंटा-ध्वनि आज नहीं मालूम किस दिन की याद दिलाकर लगातार रव कर रही है। घटाओं की गम्भीर गर्ज्जना में मिलकर न जाने इस ध्वनि में एक कैसा आनन्द आ रहा है जो मुझे चंचल बना दे रहा है !

सखी !

आसमान बादलों से घिर गया !

—:*:—

मैं क्यों गाती हूँ ?

मैं क्यों गाती हूँ ?

उस दिन मेरे द्वार पर किसी अपरिचित ने मुर्झाए फूलों की माला बिखरा दी थी !

हवा न जाने उनकी पँखुरियों को कहाँ उड़ा ले गई ?

किन्तु एक पँखुरी मेरे चरणों में छिपी रह गई ! मैंने उसे यत्न से रखा है ! सखी,

मैं उसी के लिए गाती हूँ !

उस अनजान पथिक की याद मुझे बरबस गाने के लिये विह्वल करती है, मेरे प्राण उसका आह्वान करते हैं ! सजनी !

मैं इसी लिये गाती हूँ !

कितनी ही स्मृतियाँ लिपटी हैं इन प्राणों में ! नहीं जानती कि मैं उन्हें भुलाना चाहती हूँ या याद करती हूँ ! कौन जाने—

मैं किस लिये गाती हूँ !

उस अपरिचित ने क्यों उन मुर्झाए फूलों को मेरे द्वार पर बिखराया ? वह सूखी पंखुरी मौन रहकर ही मुझसे पूछती है वह मेरा कौन था ? उसे ही बहलाने के लिये मैं गाती हूँ क्या वह समझेगी ?

मैं किस लिये गाती हूँ ?

—:*:—

परदेशी की कथा

उस परदेशी की कथा तो सुना दे सखी !

उसने एक दिन कहा था—'मैं पुजारी हूँ !'

उसकी आँखों में भक्ति के भाव थे, हृदय में प्रेम का अंकुर।

प्राणों में वेदना और विरक्ति !

सखी, उस परदेशी की कथा सुना दे !

कौन था वह जिसे देखकर तेरे हृदय में भावना जाग उठी थी ?

तू कोकिला-सी गाने लगी और उसके चरणों में झुककर कहने लगी थी—'मैं सेविका हूँ !'

आज उसी की कथा सुना दे !

उसने फूलों से तेरा शृंगार किया था !

कितनी प्रसन्न हुई थी तू !

रोम-रोम खिल उठा था तेरा !

तू ने अपने जीवन का फूल उसी के चरणों में लुटा दिया !

वही कहानी सुना दे सखी !

सागर की बड़ी-बड़ी लहरों में तुम दोनों एक साथ खेले थे, चाँदनी-रात में दोनों ने एक ही गाना गाया था ! अंधकार की सुन-सान रात्रि में आसमान के तारों को गिनने का प्रयत्न किया था ! वही कहानी सुना दे !

तब...सहसा देश के करोड़ों प्राणियों की करुण-पुकार सुनकर वह चौंक पड़ा ! यौवन के दिन फीके हो गए, फूलों का खेल शूल-सा चुभने लगा !

सागर की गर्जना में अपने ही भाइयों का गर्जन सुन पड़ा ! चाँदनी आग बरसाने लगी ! और अंधकार में आसमान के तारे उन लाखों-करोड़ों दुखियों के आँसू बन कर आह्वान-सा करने लगे !

तभी वह तुझे छोड़कर चला गया !

उस बिदा की कहानी सुना दे !

ओ सखी ! उसी परदेशी की कहानी सुना दे !

— :*:—

उस दिन !

वर्षा से भीगे हुए पेड़ों पर पानी चमक रहा था, धरती भीगी थी, मेरी आँखें भी जल-पूर्ण हो रही थीं। तुम्हे अचानक ही देखा था उस दिन !

मैंने उपेक्षा से मुँह फेर लिया !

तुम चले गए दूर !

मैंने द्वार बन्द करना चाहा—देखा, तुम्हारी वह गहरी उसास मेरे चरणों में लोट रही है ! जाना तुम पुजारी हो !

अचानक ही समझी थी—उस दिन ! पूजा का अधिकार तो कोई किसी का छीन नहीं सकता। तुम्हारी पूजा क्यों न मेरे मन को जगाएगी पाप और पुण्य से जो परे है वही प्रेम है ! कहीं पर वह सीमित होकर अपना सौन्दर्य दिखाता है मर्यादा की रक्षा करता है, और कहीं अबाध पहाड़ी झरने की तरह झर-झर करता हुवा मन, प्राण को अपूर्व आह्लाद से भर देता है ! प्रेम की यह परिभाषा भी अचानक ही समझ पाई थी—उस दिन !

— :*: —

तुम कौन ?

तुम कौन हो ?

सदा दूर रहने पर भी मुझे ऐसा लगता है मानो तुम निरन्तर मुझमें ही हो !

क्या तुम मुझमें हो ?

तुम्हारा पथ मुझसे भिन्न है, किन्तु मुझे ऐसा भास होता है कि तुम्हारे ही पथ पर मैं चल रही हूँ।

क्या तुम मेरे पथ-प्रदर्शक हो ?

मैं तुमसे कुछ नहीं कहती, फिर भी तुम मेरे प्राणों की बात जान लेते हो !

क्या तुम अन्तर्यामी हो ?

प्रत्येक क्षण मैं तुम्हारा स्पर्श अनुभव करती हूँ लेकिन तुम दिखाई नहीं देते !

क्या तुम छलिया हो ?

मेरे दुख में भी तुम मुस्कराते ही रहते हो, मेरे आँसू तुम स्वीकार करते हो ?

क्या तुम देवता हो ?

स्वप्न

स्वप्न क्या सभी के मीठे होते हैं ?

मैंने भी मधुर स्वप्नों को पाला था नन्हें उर में, सोचा था मधु पीऊँगी भ्रमर की तरह गुनगुनाना अच्छा लगता था !

स्वप्न क्या सभी के स्वप्न ही रहते हैं ?

अपने मन को कोमल बनाकर तितली के पीछे दौड़ती थी, घन्टों बैठकर कल्पना का राज्य रचाया था !

क्या स्वप्न सभी के सुकुमार होते हैं ?

कितने ही प्रकार के रंगों से उन्हें सजाया था, मन में न जाने किस अद्भुत सुख का संचार हुवा था !

क्या सभी स्वप्नों का रंग इन्द्र धनुषी होता है ?

स्वप्न क्या सत्य नहीं हो पाते ?

—:*:—

आओ

आओ, मैं तुम्हें गाना सिखाऊँगी !

एक दिन अपनी समस्त चिन्ताएँ छोड़ दो, सम्पूर्ण रूप से निश्चिन्त हो जाओ।

उस सरिता के किनारे हम दोनों बैठकर खुशी मनाएँ !

मैं सरिता की लहरों की चंचलता चुराऊँगी ! आओ, मैं तुम्हें गाना सिखाऊँगी !

मेरी पलकें तुम्हारे चरण चूम कर कहेंगी 'यही सुख है'

आँखों की धारा तुम्हारे चरण पखारेगी। सत्य ही मैं अपनी आँखों के मोती तुम्हारे पैरों पर लुटाऊँगी !

आओ मैं तुम्हें गाना सिखाऊँगी ?

संध्या के शान्तिमय वातावरण में तुम्हारा हृदय पा जायगा उस स्वर को जो अनादि और अनन्त है ! जीवन के मधुर सपने तुम पर न्योछावर करूँगी !

आओ मैं तुम्हें गाना सिखाऊँगी !

लहरों की चंचलता में स्वर थिरक उठता है, तुम्हारे अन्तर की सोई इच्छा भी जाग पड़ेगी—उस क्षण मैं तुममें ही मिल जाऊँगी !

आओ मैं तुम्हें गाना सिखाऊँगी !

—:*:—

किसके लिये

क्षुद्र लेखनी से जो कुछ लिखती हूँ,

उसे कोई समझता है या नहीं ?

न समझे कोई इसको मुझे चिन्ता ही क्यों ?

किन्तु इस पर्वत के उसपार से जो वह गाने का स्वर नित्य सुनाई देता है, उसे खूब समझती हूँ !

मैं गाना नहीं जानती, इसी से चुपचाप लिखती हूँ — पर किसके लिये ?

ऊपर नीले आसमान में जब तारों की झिल-मिल होती है, उनकी कंपन में जो व्यथा होती है वह मेरे मन में सिहरन भर देती है ! इसीलिये तो मेरी आँखें भी मोती बरसाने लगती हैं !

पर किसके लिये ?

वह पहाड़ी झरना दिन-रात झर-झर करके जिस अतीत की याद दिलाता है वह मुझे स्पष्ट सुनाई पड़ता है ! किन्तु मैं जो दुख से हा-हाकार करती हूँ वह किस के लिये ?

जुगनू जब अपनी क्षीण ज्योति से जग-मग करके उड़ जाते हैं, तब मैं उन्हीं से प्रार्थना करती हूँ । उस भूले पथिक को मार्ग बताने के लिये !

क्या उसे पथ नहीं मिलेगा ?

—:*:—

प्रेम

दीपक जलता है !

उस उज्ज्वल शिखा को देखकर दूर से पतंग आता है !

दीपक व्याकुल होकर सिर हिलाता है 'दूर-रहो— दूर रहो' पर पतंग नहीं मानता, प्रेमी है वह ! पागल भी है ! और है अँधा !

दीपक की सुन्दरता से मुग्ध होकर पतंग प्रदक्षिणा करता है।

दीपक फिर भी इंगित से मना करता है—

'ना ना ना !'

परन्तु पतंग अधीर हो उठता है दीपक को छूने के लिये !

और दूसरे ही क्षण पतंग दीपक से लिपट गया !

झुलसे हुए पंख शेष रहे !

दीपक उसी प्रकार जलता ही रहा !

दुनियाँ में प्रेम करके सुख नहीं मिलता ?

परन्तु बिना प्रेम के कोई जीवित नहीं रह सकता !

पतंग ने प्रेम किया दीपक से, प्रतिदान न पाकर जी न सका वह ! और......

निश्चय ही दीपक भी प्रेम करता है, इसीलिये वह अंधकार में जलता ही रहता है !

—:*:—

उसे देखा था

मैंने उसे अचानक ही भीड़ में देखा था !

उन हजारों आँखों के बीच में उसने मुझे ढूँढ लिया !

प्राणों की मधुर पीड़ा जाग उठी !

वह मेरा कौन है ?

मैंने उसे कभी नहीं देखा था पहले,

मेरी भावुकता मर चुकी थी,

प्राणों में मृत्यु का सूनापन छा गया था,

तभी अचानक वह मिला था !

उससे मेरा क्या नाता है ?

उसकी आँखों में आकर्षण है !

उसकी वाणी में मिठास भरी है !

और उसकी उपस्थिति में सुख है !

कहते हैं वह बड़ा निर्मम है, पर मेरे मन में उसके लिये एक विशेष स्थान है !

मैं उसे चाहती नहीं, प्यार भी नहीं करती, केवल उसे देखना चाहती हूँ !

मेरे लिए वह स-हृदय है, वह मुझे जलाना नहीं चाहता, वह मुझे लुभाना नहीं जानता, वह तो केवल मेरी मुस्कान देखना चाहता है !

वह कौन है मेरा ?

—:*:—

नाविक

नदी के तीर पर नौका बाँधकर न जाने वह कहाँ चला गया ?

संध्या की अंतिम किरणों से पहाड़ों की चोटियाँ रक्त वर्ण हो गई हैं।

वह अभी तक नहीं लौटा है !

नौका बाँधकर न जाने कहाँ चला गया ?

उसे संगीत से बड़ा प्रेम है।

पर, मैं तो गाना नहीं जानती !

वह सौन्दर्य का पुजारी है !

किन्तु मेरा सौन्दर्य तो मुर्झा गया है !

वह प्रेमी है ! परन्तु...

मैं तो प्रेम करना भी नहीं जानती !

वह अभी तक नहीं लौटा !

तीर पर नौका बाँधकर न जाने वह कहाँ चला गया ?

आधीरात को जब बाँसुरी बज उठेगी--

उस स्वर को सुनकर तारे भी काँप जाते हैं !

तब वह लौट आएगा, वह संगीत प्रेमी है !

मन्दिर की देवदासी जब सोलह शृंगार करके थाल सजाकर पूजा करने जाएगी तब वह उस सौन्दर्य पर मुग्ध होकर लौट आवेगा।

उसे सौन्दर्य से प्रेम है !

और ..दीपक की लौ पर जब पतंग अपने प्राण निछावर कर देगा तभी वह लौटेगा ?

वह प्रेमी है !

नदी के तीर पर नौका बाँधकर वह न जाने कहाँ चला गया ?

नदी की लहरें हिल-मिलकर उसका आह्वान करती हैं ! नौका धीरे-धीरे झूम कर उसे बुला रही है ! और मेरी उमड़ती हुई आँखें भी न जाने क्यों उसी की राह देखती हैं !

तीर पर नौका बाँधकर वह चला गया !

—:*:—

मेरा अतिथि

आओ तुम मेरे अतिथि बनो।

मेरे आँगन में बच्चा खेल रहा है।

अभी-अभी मेरे स्वामी कार्य पर से लौटे हैं।

मैं घर में दीपक जलाती हूँ!

ओ पथिक, आओ, मेरे अतिथि बनो!

मैं तुमको अपनी कहानी सुनाऊँगी, तुम सुनकर दुखी न होना।

'आओ, मेरे अतिथि बनो!

संभव है मेरे वे बीते हुए दिन क्षण भर को लौट आवें। मैं अपने बीते जीवन को प्यार करती हूँ!

पथिक! आओ, मेरे अतिथि बनो!

संध्या की लाली में तुम्हारी कान्ति और भी सुन्दर हो उठी है!

तुम्हारे गेरुवे वस्त्र के ऊपर इस लाली ने दूना रंग चढ़ा दिया है!

ओ योगी! मेरे अतिथि बनो!

तुम सन्यासी हो क्या?

सारे विश्व को अपने में लीन समझने वाले महान! आओ, 'माँ' की कुटी को पवित्र करो!

नारी का जननी-रूप ही सर्वोपरि है!

आओ तुम मेरे अतिथि बनो!

प्रातः की सुनहरी बेला में मैं तुम्हें बिदा कर दूँगी।

तुम्हारी जिज्ञासा व्यर्थ न होने दूँगी!

तुम हँसते हुए जाना, मैं नहीं रोकूँगी!

आओ, आज मेरे अतिथि बनो!

तुम क्या मुझे नहीं पहचाने?

संभव है नहीं

किन्तु...माँ को पहचानने में भूल नहीं होती!

ओ रे! तुम सन्यासी हो?

ओ अपरिचित! आओ, आज मेरे अतिथि बनो!

—:*:—

पतझड़ की संध्या

पतझड़ की संध्या कितनी उदास मालूम होती है !

सभी पत्ते झर गए हैं, राह में सूखे पत्ते बिछे हैं !

मरमर-सर-सर आवाज सुनाई देती है !

पेड़ों के कंकाल खड़े हैं—बसन्त की प्रतीक्षा में !

कुछ दिनों के बाद बर्फ गिरेगी—ये पेड़ फ़िर भी ऐसे ही खड़े रहेंगे, बसन्त की प्रतीक्षा में !

पतझड़ की संध्या कितनी उदास मालूम होती है !

चिड़ियाँ अपने घोसलों में जल्दी ही लौट आती हैं !

सूर्य जल्दी ही पश्चिम में छिप जाता है !

पतझड़ की संध्या कितनी उदास मालूम होती है !

नदी के उस पार से किसी के गाने का स्वर मन को और भी उदास कर देता है !

पतझड़ की सन्ध्या कितनी उदास मालूम होती है !

—:*:—

स्वर का आकर्षण

सुनसान पहाड़ों के उसपार से न जाने यह कैसा स्वर मुझे सुनाई देता है !

दिन मुझे उदासी से भर जाते हैं !

रात को उन्मन-सा मन उछल कर आँखों में समा जाता है !

जीवन में कोई उत्साह नहीं, एक ही धारा बह रही है !

बहुत दूर से आनेवाला स्वर मुझे आकर्षित कर रहा है !

सरोवर के किनारे खड़े होकर देखा—

लहरों के उत्साह को, संध्या की अन्तिम किरणों ने अनजाने ही लाली बिखेर दी !

एक कसक मन को मूर्छित कर गई !

किरणों के साथ बिदा होने वाला स्वर मेरे प्राणों को पीड़ा से भर जाता है !

संसार का कोलाहल मुझे नहीं भाता, किन्तु इसकी उपेक्षा भी नहीं कर पाती !

न जाने कौन मुझे झकझोर कर बता जाता है कि मैं बन्दिनी हूँ ! एक बोझ निरन्तर ही मन को दवाए रहता है ! प्रत्येक श्वास बंधन में है !

कितने ही दिनों से यह स्वर मुझे मुक्ति का संकेत बता रहा है !

कितने आश्चर्य की बात है !

सागर की गर्ज्जन में, ऊँचे हिमालय की चोटी में, जड़ और चेतन में एक ही स्वर बसा हुवा है !

मेरे रोम-रोम में यह स्वर गूँज उठता है !

दूर-क्षितिज के उस पार से भी उसी स्वर की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है !

—:*:—

बाँसुरी

कितने ही दिनों से मैं इस बाँसुरी को सुनती आई हूँ। दिनों, महीनो, बर्षों से—नहीं-नहीं जन्म-जन्मान्तर से ही मैंने यह बाँसुरी सुनी है !

इसे कौन बजाता है यह मैं नहीं जानती, फिर भी वही चिर-परिचित तान, वही रागिनी और वही स्वर ! मेरे प्राणों में मानो युग-युग से वही बजती आई है, रोम-रोम में वही स्वर व्याप्त हो गया है !

कितनी मोहक है यह बाँसुरी !

बचपन में जब यह बजती थी तब सरल उर में एक विचित्रता का आभास मिला करता था।

किशोरावस्था में इसे सुनकर जान पड़ा कि किसी नवीनता में प्रवेश करना है !

कितनी प्यारी थी यह बाँसुरी !

यौवन के दिनों में जब यह बजी तब इसका स्वर बड़ा करुण हो उठा था ! मेरे लिये—केवल मेरे लिये ! चारों ओर की दीवारें भी कराह उठी थीं वेदना से—व्यथा से ! और पीड़ा से मैं सिसक उठी, बन्दिनी थी मैं ! निराशा से जीवन भर गया !

कितनी करुण है यह बाँसुरी !

गर्मी की लम्बी दुपहरियाँ इसके स्वर से आग उगलने लगीं, मैं उसी स्वर में जल गई !

कितनी ऊष्ण है यह बाँसुरी !

वर्षा-ऋतु में मेघों के भीम गर्जन में इसका स्वर भैरव गान गाने लगा, चारों ओर पानी ही पानी ? मेरी आँखें भी पानी बरसाने लगीं, मैं डूब गई !

कितनी सजल है यह बाँसुरी !

शीत-काल में ध्वनि काँपती हुई-सी निकली, स्वर इतना मन्द और शीतल था—मैं सिहर उठी !

कितनी ठण्डी है यह बाँसुरी !

यह बाँसुरी नित्य बजती है !

हृदय में कौन-सा अनुभव होता है, नहीं जानती, सर्वत्र सूनापन बिखर जाता है, उसी सूनेपन में मिल जाती हूँ मैं और मुझ में लय हो जाता है बाँसुरी का स्वर !

कितनी अमर है यह बाँसुरी ?

—:*:—

लीला

स्वामी !

तुम्हारी यह कैसी लीला है ?

तुम उसके साथ खेलते क्यों हो ?

तुम्हारी यह लीला मुझे नहीं भाती !

मैं उससे ईर्षा करती हूँ !

सारा संसार कहता है यह लीला सचमुच तुम्हारी ही है, मैं उदास हो जाती हूँ !

तुम अपनी लीला को इतना क्यों चाहते हो ?

मैं तुम्हें चाहती हूँ स्वामी !

तुम अपनी लीला को हटाओ तो, मैं तुममें मिलकर एक हो जाऊँगी, तब तुम्हारी लीला की इतनी प्रभुता न रहेगी।

दिखाओ तो मुझे भी अपनी वह लीला। दुनियाँ कहती है हर जगह तुम्हारी ही लीला है, फूल में, पत्ते में, हास में, रुदन में और समस्त चराचर में।

यदि ऐसा है तो फिर तुम कहाँ हो ?

बताओ मेरे स्वामी ! तुम हो या तुम्हारी लीला ?

—:*:—

क्यों ?

मैं सोई थी, तुमने मुझे क्यों जगा दिया ?

उमंग से भरे हुए हृदयों को देखकर मन में एक हूक उठती है, एक न मिटने वाली प्यास से प्राण व्याकुल हो जाते हैं। इसी लिये तो--इन सब से बचने के हेतु मैं सोई थी।

तुमने मुझे क्यों जगा दिया ?

तुम्हारा स्पर्श मुझे नहीं मिला, मिला केवल तुम्हारे उच्छ्वास का गहरा कंपन ! उसी से मैं जाग उठी !

कहो, तुमने मुझे क्यों जगाया ?

तुम्हारी आँखों में विषय नहीं, वासना नहीं, केवल मात्र मेरा ही प्रतिबिंब झाँक रहा है ! तुम्हारे दर्शनों के लिये मेरे प्राण न जाने क्यों व्याकुल हो गए हैं !

मुझे जगाकर तुम कहाँ चले गए ?

प्रश्न ?

तुम मुझे चाहते हो या नहीं ?

किससे पूछूँ ? कौन बताएगा ?

प्रातः काल ऊषा से पूछा तो उसने उत्तर दिया—

'मुझे क्या पता, पर इतना जानती हूँ कि वे आज आने वाले हैं, देखती नहीं रोली बिखेर रही हूँ, शगुन होगा, प्रियतम आने वाले हैं।'

अरे ! मैं किससे पूछूँ ? कौन बताएगा ?

तुम मुझे प्यार करते हो या नहीं ?

सब से पूछ चुकी, नदी, बन, पर्वत और प्राणी, परन्तु किसी ने मुझे बताया नहीं ! सभी तो कर्म निरत हैं, सभी तुम्हारी प्रतीक्षा में है ! तुम कब आओगे ?

ओरे ! तुम कब आओगे ?

किस पथ से तुम आओगे ? यदि मैं जानती तो उस पथ में अपनी पलकें बिछाती !

किससे पूछूँ कि तुम मुझे चाहते हो या नहीं ?

कौन बताएगा ?

—:*:—

भ्रमर-गीत

भौंरा गाता है गुन, गुन, गुन !

कोमल किसलय हिल उठे, पवन डोलने लगा !

भ्रमर ने फिर गाया, गुन, गुन, गुन, गुन !

कलियों का जन्म हुवा—कितनी सुकुमार ! कितनी भोली ! एक साथ कितनी ही कलियाँ खिल गईं ?

भ्रमर गाने लगा—गुन, गुन, गुन, गुन !

हँसकर कलियों ने अपना उर खोल दिया ! पँखुरियों का सौरभ चारों ओर फैल गया ! सुगंधित वायु बहने लगी !

भौंरे ने मधु पीकर गाया—गुन, गुन, गुन, गुन !

—:*:—